मार्क्सवाद
परिचय माला 2

पूँजीवादी समाज

शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

पूँजीवादी समाज

लेखक
शिव वर्मा

प्रकाशक

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

पूँजीवादी समाज

लेखक : शिव वर्मा

प्रथम संस्करण : 1958
प्रस्तुत संस्करण : 2014
प्रथम पुनर्मुद्रण : 2017

मूल्य : 10 रुपये

मुद्रक : प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स ए-21 झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी.टी. रोड शाहदरा, दिल्ली-95

समाज का विकास

जिस समाज में हम रहते हैं वह श्रेणी समाज है। शोषण या लूट-खसोट इस समाज की बुनियाद है।

श्रेणी किसे कहते हैं?

श्रेणी या वर्ग उन व्यक्तियों का समूह है जो पैदावार में एक ही तरह का काम करते हैं और जिनके आर्थिक हित एक जैसे होते हैं। अगर समाज के कुछ लोग सारी जमीन को दबा लें, उस पर अपना अधिकार जमा लें तो यह सब लोग मिलकर भूस्वामी वर्ग कहलायेंगे। बाकी लोग मजबूरन जमींदार या भूस्वामी से जमीन लेकर खेती करेंगे। यह सब लोग मिलकर किसान श्रेणी कहलायेंगे। इसी तरह अगर समाज के कुछ लोग कारखानों और मिलों के मालिक हैं और दूसरे लोग इन मिल मालिकों के यहाँ मेहनत-मजदूरी करते हैं तो पहले को पूँजीपति वर्ग कहेंगे और दूसरे को सर्वहारा। यों तो समाज मनुष्यों का बना है, पर गौर से देखने से मालूम होगा कि मनुष्य समाज अलग-अलग टुकड़ों में बँटा है और इन टुकड़ों के स्वार्थ सिर्फ भिन्न ही नहीं विरोधी भी हैं, एक-दूसरे से टकराते भी हैं।

हमारे आज के समाज में एक तरफ वह वर्ग है जिसके सदस्य दूसरों की मेहनत से फायदा उठाते हैं। दूसरी तरफ वह लोग हैं जिनकी मेहनत की कमाई पहला वर्ग हड़प जाता है। बिना खुद मेहनत किए दूसरों की कमाई हड़प जाने को शोषण कहते हैं। इस दृष्टि से पहले वर्ग को शोषक और दूसरे को शोषित कहा जायेगा।

शोषण की दृष्टि से समाज दो बड़े हिस्सों में बँटा है। एक तरफ हैं जमींदार और पूँजीपति। इन्हें शोषक वर्ग कहते हैं। दूसरी तरफ हैं मजदूर और किसान। यह शोषित कहे जाते हैं। इन दो बड़े वर्गों के बीच एक तबका है जिसे मध्यम वर्ग कहते हैं। इसके ऊपरवाले भाग को उच्च-मध्यम वर्ग कहते हैं और निचले भाग को निम्न-मध्यमवर्ग कहते हैं। ऊपरवाला भाग जैसे सरकार के या कम्पनियों के बड़े-बड़े अफसर और ओहदेदार, बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर आदि शोषक वर्ग के ज्यादा पास हैं और उस पर निर्भर करते हैं। निचले भाग में आते हैं दफ्तरों में काम करनेवाले

फटेहाल बाबू लोग, छोटे दुकानदार, स्कूलों के अध्यापक आदि। यह सफेदपोश लोग होते तो गरीब हैं, पर अपने को गरीब कहने में शर्माते हैं और बड़े लागों में उठने-बैठने का मौका पाकर अपने को धन्य मानते हैं। आर्थिक दृष्टि से तो यह लोग मजदूरों और किसानों के पास होते हैं पर दिमागी तौर पर वे शोषक वर्ग के काफी पास होते हैं। इन कारणों से क्रान्ति में इस वर्ग की ढुलमुल स्थिति कही गयी है। यह थाली का बैंगन होता है और जिधर बोझ देखता है उसी तरफ लुढ़क पड़ता है इनमें से कुछ लोग अपने वर्ग स्वार्थ को छोड़कर क्रान्तिकारी वर्ग के हितों से अपने को मिला लेते हैं, जैसे मजदूर और किसान पार्टियों में काम करनेवाले लोग। ऐसे लोगों को वर्ग त्यागी (डिक्लास्ड) कहते हैं।

क्या समाज में श्रेणियाँ हमेशा से रही हैं?

यह कहना गलत है कि समाज में श्रेणियाँ हमेशा से रही हैं। इतिहास के आरम्भ में आदमी छोटे-छोटे गिरोहों में रहता था जिन्हें कबीला कहते थे। कबीले के सब आदमी एक साथ मिल-जुलकर काम करते थे और जो थोड़ा-बहुत खाना अपनी मिली-जुली मेहनत से वे जमा कर पाते थे, इसका इस्तेमाल भी एक साथ मिलकर ही करते थे।

उस समय उनके पास लकड़ी और पत्थर को छोड़कर और कोई औजार न था। इसीलिए इन अधूरे और नाकाफी औजारों और हथियारों को लेकर आदमी प्रकृति की ताकतों के खिलाफ मिलकर ही खड़ा हो सकता था। उनके सामने समूह में सम्मिलित तौर पर रहने के अलावा और कोई चारा ही न था। उस समाज को आदिकालीन कम्युनिस्ट समाज कहते हैं।

हमने देखा कि दुनिया में एक समय ऐसा भी था जब समाज में श्रेणियाँ न थीं। न कोई लूटेरा था और न कोई उसका दास। सब बराबर थे। लेकिन कुछ पूँजीवादी लेखक यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि व्यक्तिगत पूँजी की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितनी की दुनिया। कुछ लोग तो जानवरों तक में पूँजी की भावनाएँ खोजते फिरते हैं। उनका कहना है कि सम्पत्ति जोड़ने की भावन तो भगवान ने जानवरों तक को दी है चींटी भी खाना जमा करती है यह सम्पत्ति जोड़ना नहीं तो क्या है? लेकिन ये लोग वह भूल जाते हैं कि चींटी खाना बेचकर मुनाफा नहीं कमाती और न उससे चोरबजारी करती है। दरअसल पूँजीवादी लेखक व प्रचारक कम्युनिज्म की बात से तथा व्यक्तिगत पूँजी की प्रथा को मिटा देने की बात से डरते हैं। इसलिए वे हमारे सामने चीजों को गलत ढंग से रखने की कोशिश करते हैं।

तो हमने देखा कि समाज में आरम्भ से ही श्रेणियाँ नहीं थी। शुरू का समाज श्रेणी रहित समाज था।

श्रेणियों की शुरुआत कहाँ से हुई?

जैसा ऊपर बता चुके हैं, शुरू-शुरू में आदमी के पास लकड़ी और पत्थर के अलावा औजार नाम की और कोई चीज नहीं थी। लेकिन धीरे-धीरे उसने आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये-नये औजार ईजाद किए और दूसरी चीजों का पता लगाया। उसने आग का इस्तेमाल करना, जानवर पालना, बर्तन बनाना, पौधे उगाना सीखा। पौधे उगाना खेती की तरफ पहला कदम था। इससे एक तरफ तो अलग-अलग कबीलों के अलग-अलग पेशे हो गए। कोई कबीला जानवर पालने लगा, जैसे आजकल बनजारे पालते हैं और किसी ने खेती शुरू कर दी। और दूसरी तरफ कबीले-कबीले में तिजारत शुरू हो गयी। एक तो नये कामों में यों ही पहले से ज्यादा मेहनत की जरूरत पड़ती थी उस पर तिजारत की माँग पूरी करने के लिए अपनी जरूरत से ज्यादा पैदा करना पड़ता था। अब पहले से अधिक काम की जरूरत पड़ने लगी। कबीलों में आपस में लड़ाइयाँ भी होती रहती थीं। इन लड़ाइयों ने काम करनेवालों की कमी को पूरा किया पहले, दुश्मन के जो आदमी गिरफ्तार कर लिए जाते थे उन्हें मार डालते थे। अब उन्हें गुलाम बनाकर उनसे काम लिया जाने लगा। इस तरह सामाजिक काम के बँटवारे ने समाज को ही बाँट दिया। समाज दो श्रेणियों में बँट गया मालिक और गुलाम, शोषक और शोषित, लुटेरे और कमेरे। अब समाज में एक ऐसी श्रेणी बन गयी जो दूसरों की मेहनत पर जिन्दा रहने लगी। यहाँ से श्रेणी समाज की शुरूआत होती है।

गुलामी के युग से आज तक समाज में एक श्रेणी, दूसरी श्रेणी का शोषण करती चली आयी है। हाँ, समय-समय पर इस लूट और शोषण की शक्ल बदलती रही है। पहले गुलामी प्रथा थी, फिर खेतिहर गुलामी की प्रथा आयी, जो सामन्तवादी युग के शोषण का एक रूप था और आजकल के शोषण का तरीका है मजदूरी पर मेहनत करवाकर अतिरिक्त मूल्य कमाना। यह शोषण का पूँजीवादी तरीका है।

गुलामी प्रथा में सामाजिक सम्बन्धों की क्या शक्ल थी?

गुलामी प्रथा में मालिक का गुलाम पर वैसा ही हक होता था जैसा मकान, जमीन या जानवर पर। हम बैल और घोड़ा पालते हैं, वह हमारी सम्पत्ति का हिस्सा होते हैं और उनके मर जाने से हमारी सम्पत्ति घटती है। इसलिए बैल और घोड़े को दाना-घास देते रहने में हमारा फायदा है। इसी तरह गुलामों का मालिक भी गुलामों को खाना देने पर मजबूर था। गुलाम की मौत से मालिक की सम्पत्ति घटती थी।

पहले कबीलों की लड़ाई में जो हारता था उसके आदमियों को गुलाम बना लेते थे। आगे चलकर गुलाम पकड़ने के लिए ही लड़ाइयाँ होने लगीं। गुलामों की खुलेआम तिजारत होने लगी। बाजारों में हजारों की तादात में जंजीरों में बाँधकर

बेचने के लिए गुलाम लाए जाते थे। इससे गुलामों की जिन्दगी जानवरों से भी सस्ती हो गयी। इस जिन्दगी से ऊबकर गुलामों ने विद्रोह का रास्ता अपना लिया। इन विद्रोहों ने गुलामी प्रथा पर खड़े समाज की बुनियाद को हिला दिया। लेकिन उससे शोषण का अन्त नहीं हुआ। गुलामी की जगह मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का एक नया तरीका निकल आया। गुलाम रखनेवाले समाज की जगह सामन्तवादी समाज ने ले ली।

सामन्तवाद में सामाजिक सम्बन्धों की क्या शक्ल थी?

सामन्तवादी समाज में मुट्ठी-भर सामन्त किसानों की विराट जनता का शोषण करते थे। इन सामन्तों को जमींदार या भूस्वामी भी कहते थे। इन्होंने किसानों की उस सारी जमीन पर, जिसे वे पुश्तों से जोतते आये थे, पूरा अधिकार जमा लिया। जमीन जोतने का हक पाने के लिए किसानों को इन जमींदारों की तमाम किस्म की सेवाएँ करनी पड़ती थीं।

सौदागरों से अपने ऐश की चीजें खरीदने के लिए जमीदारों को ज्यादा पैसे की जरूरत होती थी। इसलिए वे किसानों की फसल का ज्यादातर हिस्सा जबरदस्ती उनसे ले लेते थे। जैसे-जैसे सौदागरों की तिजारत बढ़ी, वैस-वैसे जमींदारों की जरूरतें बढ़ीं और उसी हिसाब से किसानों का शोषण बढ़ा। इससे खेतिहर गुलामी का जन्म हुआ।

खेतिहर गुलामी शोषण का एक भयंकर रूप है। जो किसान पहले थोड़े-बहुत आजाद भी थे अब बिल्कुल खेती से बँध गये और जमींदार की सम्पत्ति बन गये। जैसे किसी जमीन पर पेड़, कुआँ या मकान होता है तो जमीन बिकने पर उसके साथ उस पर का पेड़, कुआँ या मकान भी बिक जाता है, वही हाल किसान का भी हो गया। जमीन के साथ जमीन जोतनेवाला भी बँध जाता था। खेत छोड़कर भाग जाना किसान के लिए कानूनी गुनाह था।

आगे चलकर जमीदारों ने किसानों की जमीनें बेदखल कर लीं या किसानों के खेतों पर हद लगा दी कि इससे ज्यादा खेत कोई किसान नहीं रख सकेगा। किसानों से निकाली जमीन को लेकर उन्होंने सीरें कायम की और उन पर उन्हीं किसानों को काम करने के लिए मजबूर करने लगे।

बेगार भी चालू की गयी। किसान को हफ्ते में तीन या चार दिन जमींदारों के खेत पर काम करना पड़ता था।

इस बढ़ते हुए शोषण और लूट के खिलाफ किसानों ने भी विद्रोह का रास्ता पकड़ा। करीब-करीब हर देश के इतिहास में हमें सामन्तवादी शोषण और जमींदारी प्रथा के खिलाफ किसान विद्रोहों की कहानियाँ मिलती हैं।

जमींदारों के खिलाफ किसानों के इस संघर्ष से उभरते हुए पूँजीपतियों को बढ़ने का अच्छा मौका मिला। यह लोग खेतिहर गुलामी के खिलाफ किसानों के संघर्ष के

नेता बन गये। लेकिन किसानों के इन संघर्षों से भी शोषण का अन्त नहीं हुआ। उभरते हुए पूँजीपतियों ने इन संघर्षों का फायदा उठाया और इस प्रकार समाज पर शोषण की एक नयी व्यवस्था लद गयी इस नयी व्यवस्था का नाम है पूँजीवादी व्यवस्था।

पूँजीवाद का उदय

पिछले सफों में शोषण के अलग-अलग तरीकों के बारे में लिख चुके हैं। शोषण का तरीका पैदावार के तरीके पर निर्भर करता है। जब पैदावार के तरीके बदल जाते हैं तो शोषण का तरीका भी बदल जाता है।

पैदावार के खास-खास तरीके

पैदावार या उत्पादन दो प्रकार का होता है एक स्वाभाविक उत्पादन और दूसरा जिन्सी उत्पादन। जब आम तौर पर माल अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार किया जाता है तो उसे 'स्वभाविक उत्पादन' कहते हैं। पहले बहुत जगहों पर अपने ही खेत पर उगाई कपास से घर की औरतें सूत कात लेती थीं, फिर इसी सूत से मर्द घर में करघे पर मोटा कपड़ा बुन लेते थे और औरतें उस कपड़े से मिर्जई, अंगरखे बना देती थीं। इस तरह की पैदावार को स्वाभाविक उत्पादन कहेंगे। खेतिहर गुलामी प्रथा के जमाने में स्वाभाविक उत्पादन की प्रथा ही मुख्य थी। उस समाज में तिजारत के लिए खास जगह भी नहीं थी। जब समाज के अधिकतर लोग अपनी जरूरत की तमाम चीजों को स्वयं ही तैयार कर लेते हों और दूसरों की बनायी चीजों की उन्हें खास जरूरत न पड़ती हो तो उस समाज में तिजारत के लिए कोई खास जगह नहीं हो सकती। इसके यह माने नहीं कि गुलामी और सामन्तवादी जमाने में तिजारत होती ही न थी हाँ उसका कोई विशेष स्थान न था।

आगे चलकर जब लोगो में काम का बँटवारा हो गया और अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग पेशे अपना लिए, तो उन्हें दूसरों की बनायी चीजों की जरूरत पड़ने लगी। अगर एक आदमी कुम्हार है तो वह बर्तन ही बनायेगा और जरूरत की बाकी चीजों, जैसे कपड़ा, खाना, जूता, आदि के लिए दूसरों पर निर्भर रहेगा। यह हालत आ जाने पर हर व्यक्ति को अपनी बनायी हुई चीज बेचकर उसके दाम से दूसरे की बनायी चीज खरीदनी पड़ती है। तब समाज में तिजारत का विशेष स्थान हो जाता है।

शुरू में एक कबीले के लोग, दूसरे कबीले के लोगों से तिजारत करते थे। बाद में आपस में ही तिजारत होने लगी। उस समय तिजारत सामान के अदला-बदली की शक्ल में होती थी।

तिजारत बढ़ने पर पैसे की जरूरत पड़ी। शुरू में आज की तरह सोने-चाँदी की शक्ल में पैसा नहीं था। उस समय जिस चीज की ज्यादा माँग होती थी वही पैसा बन जाती थी। एक समय था जानवर पैसे का काम करते थे। गाँवों में अनाज तो अब भी पैसे का काम करता है। इस पैसे को 'माध्यम' कहते हैं, यानी ऐसी चीज जिससे और सब चीजें बदली जा सकें। धीरे-धीरे सोने-चाँदी ने माध्यम की जगह ले ली और समाज में सिक्कों का चलन हुआ।

अब माल बनानेवाला माल को अपने लिए न बनाकर बाजार में बेचने के लिए यानी तिजारत के लिए बनाने लगा तो इस प्रकार की पैदावार को जिन्सी पैदावार या 'जिन्सी उत्पादन' कहते हैं। मिसाल के तौर पर मोची जूते बनाता है। वह न तो उन सब जूतों को स्वयं पहनेगा और न ही उन्हें खाकर जिन्दा रह सकेगा। वह जूते बनाता है कि उन्हें बाजार में बेचकर दूसरी जरूरत की चीज खरीदे। यह जिन्सी उत्पादन है।

जिन्सी उत्पादन दो तरह का होता है   साधारण जिन्सी उत्पादन और पूँजीवादी जिन्सी उत्पादन।

साधारण जिन्सी उत्पादन और पूँजीवादी जिन्सी उत्पादन में क्या अन्तर है?

साधारण जिन्सी उत्पादन में उत्पादक यानी काम करनेवाला जिन औजारों पर काम करता है उनका मालिक होता है और जो कुछ माल तैयार करता है उसका भी मालिक होता है। वह खुद मेहनत करता है, दूसरे की मेहनत नहीं खरीदता। यानी दूसरों का शोषण नहीं करता है। मोची को ले लीजिए, वह अपनी रापी-सुतारी का मालिक है और अपनी मेहनत से जो जूता बनाता है उसका भी मालिक है   जहाँ चाहे और जिनके हाथ चाहे बेचे। साधारण जिन्सी उत्पादन पूँजीवाद से पहली अवस्था का उत्पादन है जो पूँजीवाद के लिए रास्ता तैयार करता है। किसान भी इसी तरह का साधारण जिन्सी उत्पादक है।

पूँजीवादी जिन्सी उत्पादन इससे उलटा है। वहाँ पूँजीपति कारखानों में मशीन, औजार और कच्चा माल जमा करता है और फिर किराये पर मजदूर रखकर माल तैयार करवाता है। यहाँ के उत्पादक के पास यानी मेहनत करके माल पैदा करनेवाले मजदूर के पास न तो अपने औजार ही होते हैं और न वह अपनी मेहनत से तैयार किये हुए माल का मालिक होता है। यहाँ औजारों और कच्चे माल का मालिक पूँजीपति होता है जो मजदूर का शोषण करता है।

साधारण जिन्सी उत्पादन में हाथ से काम करनेवाला जिन्स या माल बाजार में बेचता है और बेचने से जो पैसा मिलता है उससे अपनी जरूरत की चीज खरीदता

है, अर्थात उत्पादक बेचता है खरीदने के लिए।

पूँजीवादी जिन्सी उत्पादन में पूँजीपति अपनी पूँजी से औजार, कच्चा माल और श्रम-शक्ति, यानी मजदूर की काम करने की ताकत खरीदता है। इनसे कारखाने में माल तैयार करवाता है, फिर इस तैयार जिन्स या माल को बाजार में बेच देता है। यहाँ गंगा की धारा उलटी है। यहाँ पूँजीपति खरीदता है बेचने के लिए। मजदूर का शोषण और पूँजीपति का मुनाफा इसी खरीदकर बेचने में छिपा है। इस पर आगे चलकर लिखेंगे। पहले यह समझ लीजिए कि शुरू-शुरू में पूँजीपति के हाथ में पूँजी जमा कैसे हुई।

शुरू में पूँजीपतियों के हाथ में पूँजी कहाँ से आयी?

जब जिन्सी पैदावार बढ़ी तो उसके साथ तिजारत भी बढ़ी। इससे व्यापारियों की एक श्रेणी पैदा हो गयी। व्यापारी जमीदारों, राजाओं को ऐश या आराम की चीजें लाकर देते थे और ये लोग खेतिहर गुलामों को चूसकर इन चीजों का दाम अदा करते थे।

इसके साथ महाजनी भी बढ़ी, बहुत से व्यापारी खुद महाजन भी होते थे। जमींदार, राजा, सरकार सबको व्यापारियों से सामान खरीदने के लिए ज्यादा रुपये की जरूरत पड़ती थी। वे लोग महाजनों से रुपया उधार लेते थे। महाजनों के सूद की दर बहुत ज्यादा थी। जमींदार, राजा आदि सूद भी किसानों को लूटकर अदा करते थे।

इस तरह किसानों का खून चूसकर लूटा गया रुपया जमीदारों के हाथ से व्यापारियों और महाजनों के हाथों में जमा होने लगा यह तीन-चार सौ वर्ष पहले की बात है कि उस समय योरुप में स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड और इंग्लैण्ड आगे बढ़े हुए देश थे। उन्होंने समुद्री व्यापार को खूब आगे बढ़ाया। इसके अलावा पूँजी जमा करने का एक और खास तरीका था समुद्री डाके। व्यापार, सूदखोरी, लड़ाई, जीत और डाके शुरू में पूँजी जमा करने के यह खास तरीके थे। दूसरे शब्दों में शक्ति का प्रयोग ही शुरू में पूँजी जमा करने का खास साधन रहा क्योंकि व्यापारियों और महाजनों का रुपया भी राजों, जमीदारों ने किसानों को लूटकर ही दिया था।

शुरू-शुरू में हिन्दुस्तान में जब अंग्रेज आये तो उन्होंने भी ऐसी ही लूट से पूँजी जमा की थी। 1757 से 1766 के दस सालों में वे हिन्दुस्तान से 60,00,000 पौंड लूटकर ले गये थे। इसके अलावा रिश्वत और चोरबाजारी से उन्होंने काफी कमाया था।

हमने पूँजी की प्रारम्भिक बढ़ती की कुंजी पा ली।

जब दूर-दूर के देशों के साथ तिजारत होने लगी तो पैदावार बढ़ाने की जरूरत पड़ी। छोटे स्तर पर जिन्सी उत्पादन बेकार हो गया। उस समय यह जमा की हुई

पूँजी काम आयी जिसकी मदद से बड़े पैमाने पर पैदावार का संगठन किया गया। पूँजीवादी शोषण भी आया। पूँजीवादी शोषण मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का आखिरी रूप है।

पूँजीवादी उत्पादन में पूँजीपति किराये पर मजदूर रखकर काम करवाता है। अब सवाल यह उठता है कि खुले बाजार में अपनी श्रम-शक्ति बेचनेवाले यह मजदूर पूँजीपति को कहाँ से मिले? जवाब साफ है। दस्तकारों और किसानों को बेरोजगार बनाकर।

अगर एक दस्तकार या किसान उत्पादक के पास पैदावार के साधन मौजूद हैं तो वह पूँजीपति के काम करने क्यों आयेगा। इसलिए जरूरत पड़ी कि उसके हाथ से काम करने के औजार छीन लिए जायें। तब मजबूर होकर उसे अपना बचा हुआ सब कुछ, अर्थात काम करने की ताकत या श्रम-शक्ति बेच देनी पड़ेगी। इंग्लैंड में पुश्तैनी किसानों को डण्डों, भालों और संगीनों के सहारे जमीन से भगाया गया, उनके गाँव के गाँव जला दिये गये, खेतों को चारागाहा बना डाला गया। उन्हें साधनहीन बनाने के लिए उनके साथ क्रूर से क्रूर व्यवहार किया गया।

हमने पूँजीवाद के आरम्भ की कहानी देख ली। लूट और चोरी का जमा किया हुआ रुपया और लाठी-बर्छी के सहारे बेघरबार बनाये गये आदमियों को लेकर पूँजीपतियों ने अपनी जिन्दगी आरम्भ की थी। अब पूँजीपति कारखानों और मिलों में मजदूर से काम करवाकर कैसे उसका शोषण करता है उसकी कहानी सुनिये।

पूँजीवादी शोषण

शोषण पूँजीवादी समाज की बुनियाद है

गुलामी और सामन्तवाद के युग में शोषण खुले तौर पर होता था। पूँजीवादी समाज में शोषण छिपे तौर पर होता है। हालाँकि मजदूर अपने तजुर्बे से रोज देखता है कि पूँजीपति उसकी मेहनत के बल पर मौज उड़ा रहा है। पूँजीवाद में शोषण का छिपा स्वरूप इसलिए है कि यहाँ मजदूर कानूनी तौर पर आजाद है और मालिक से बँधा नहीं है। कानून उसे किसी के यहाँ काम करने के लिए मजबूर नहीं करता। लेकिन जैसा ऊपर कह आये हैं, मजदूर के हाथ से औजार छीनकर उसे ऐसा लाचार बना दिया गया है कि अगर वह मजदूरी न करे तो चार दिन भी जिन्दा न रहे। गुलाम मालिक की सम्पत्ति था। इसलिए उसे खाना देना मालिक की जिम्मेदारी थी। मजदूर के मामले में पूँजीपति इस जिम्मेदारी से बरी है यहाँ खेतिहर गुलाम की तरह मजदूर भी कुछ समय अपने लिए काम करता है बाकी समय मुफ्त पूँजीपतियों के लिए काम करता है।

अब मजदूर के स्वतंत्र होते हुए भी उससे पूँजीपति मुफ्त में कैसे काम करा लेता है। उसका राज सुनिये।

मुनाफे के लिए उत्पादन

पूँजीवादी समाज में उत्पादन का काम चलता रहे इसके लिए दो चीजों की जरूरत है, एक तो पूँजीपतियों के पास काफी रुपया या पूँजी हो जिससे वे मिलें खड़ी कर सकें, कच्चा माल खरीद सकें और मजदूरों की मजदूरी दे सकें और दूसरे समाज में काफी तदाद में ऐसे लोग मौजूद हों जो अपना सब कुछ खो चुके हों और जिनके पास जिन्दा रहने के लिए मजदूरी के अलावा और कोई चारा न हो। पूँजीपतियों को यह दोनों चीजें कैसे मिलीं इस पर पहले के सफों में लिखा जा चुका है। अब पूँजीपति चीजों का उत्पादन शुरू करता है।

पूँजीवादी समाज में मिलें, कारखाने, खानें, मशीनें, बड़े-बड़े फार्म इन सब पर पूँजीपतियों का अधिकार होता है और इनसे जो कुछ पैदा होता है उस पर भी उन्हीं का अधिकार होता है।

इन कारखानों और मिलों में ढेरों की तादाद में चीजें बनती हैं। मिल मालिक इन सब चीजों को खुद इस्तेमाल नहीं करता। मान लीजिए कि एक पूँजीपति के पास कोयले की खान है। पूँजीपति वह सब कोयला जो रोज उस खान से निकाला जाता है न तो खाता है और न सबका सब घर में जलाता है। इसी तरह कानपुर के सिंहानिया साहब की मिलों में जो हजारों मीटर कपड़ा रोज बनता है उसे भी वे स्वयं नहीं इस्तेमाल करते। इससे यह साफ है कि पूँजीपति की चीजों के इस्तेमाल में कोई दिलचस्पी नहीं होती। उसे अगर किसी चीज से दिलचस्पी है तो इससे कि उसका माल बाजार में बिक जाये, जिससे मुनाफा हो। पूँजीपतियों द्वारा बनायी गयी सब चीजें बाजार में बिकने के लिए बनायी जाती हैं। जो चीजें बाजार में बेचने के लिए बनायी जाती हैं उन्हें जिन्स या माल कहते हैं।

जब माल बिकने के लिए बना है तो उसका कोई खरीददार भी होना चाहिए। यानी कोई ऐसा आदमी हो जिसे उसकी जरूरत हो। दूसरे शब्दों में पूँजीपति जो माल या जिन्स बनाता है उसमें समाज के किसी न किसी की जरूरत को पूरा करने का गुण होना चाहिए या यों कह लीजिए कि वह चीज ऐसी हो जिसकी समाज में माँग हो, जरूरत हो। अगर ऐसा नहीं है तो उसे कोई खरीदेगा क्यों? लेकिन पूँजीपति माल तैयार करने से पहले या करते समय कभी समाज से पूछता नहीं है कि उसे किस चीज की और कितनी जरूरत है। वह आँख बन्दकर सोच लेता है कि माल बनाओ, खरीदनेवाला तो कोई न कोई मिल ही जायेगा। माल बनाने में वह कभी समाज की आवश्यकताओं को सामने नहीं रखता। वह सिर्फ अपने मुनाफे को सामने रखता है। समाज में कपड़े की कमी के कारण किसानों और मजदूरों की बहू-बेटियाँ

और बच्चे नंगे ही घूमते हों लेकिन अगर पूँजीपति को कपड़े की बनिस्बत सेठों, राजाओं और नवाबों के लिए मोटर बनाने में ज्यादा मुनाफा है तो वह मोटरें बनाने में लग जायेगा। मतलब यह कि पूँजीपति कौन-सी चीज बनायेगा इसका फैसला वह समाज की आवश्यकता को सामने रखकर नहीं करता बल्कि मुनाफे को सामने रखकर करता है। पूँजीपति की इन हरकतों का क्या नतीजा होता है इस पर अगले सफों में लिखेंगे। उसके पहले इस मुनाफेवाली चाल को गौर से समझ लीजिए क्योंकि इससे पूँजीवादी शोषण का असली स्वरूप साफ हो जायेगा।

मुनाफा और मजदूरी

हम ऊपर बतला चुके हैं कि पूँजीवादी जिन्सी उत्पादन की खास बात यह है कि यहाँ माल को खरीदते हैं बेचने के लिए। पूँजीपति जिन्स को इसलिए खरीदता है कि उसे फिर से बेचकर उस पर मुनाफा कमा सके। लेकिन इस सीधी खरीद-फरोक्त से पूँजीपति मनमाना मुनाफा नहीं कमा सकता क्योंकि जो पूँजीपति आज बेचने आया है वह कल खरीदने भी आयेगा। उस समय कलवाला पूँजीपति आजवाले का मुनाफा झटक लेगा। इसलिए पूँजीपति किसी ऐसी जिन्स की तलाश करता है जिसके इस्तेमाल करने में उसे मुनाफा मिले। यह जिन्स है ''मनुष्य की श्रम-शक्ति'' या ''इन्सान की काम करने की ताकत।''

पूँजीपति मजदूर से कहता है कि हम तुम्हें एक रुपया देंगे तुम दिन-भर हमारे यहाँ काम करो। ऐसा करने में पूँजीपति मजदूर को नहीं खरीदता, वह उसकी दिन-भर काम करने की ताकत को खरीदता है। अब प्रश्न है कि किसी मनुष्य की दिन-भर काम करने की ताकत का मूल्य क्या होगा? बात बिल्कुल सीधी है। दिन-भर काम करने की जितनी ताकत खर्च होती है उसे फिर से वापस लाने में किन्हीं चीजों की जरूरत पड़ती है दोनों समय खाना, पहनने के लिए कपड़े, रहने का मकान, बीवी-बच्चों की परवरिस के लिए पैसे आदि। इनके बगैर उसका काम नहीं चलता। अब जो मूल्य इन चीजों का होगा वही मूल्य मजदूर की एक दिन काम करने की ताकत का होगा। मान लीजिए कि इन सब चीजों का मूल्य एक रुपया है। थोड़ी देर के लिए यह भी मान लीजिए कि पूँजीपति ने मजदूर को उसकी ताकत का पूरा मूल्य दिया है, जो कि शायद ही कभी होता है। उस हालत में एक रुपया उसकी श्रम-शक्ति का मूल्य हुआ। अब पूँजीपति मजदूर को अपने कारखाने में, जहाँ उसने पहले से ही कच्चा माल, औजार, मशीनें आदि जमा कर रखी हैं, ले आता है। मजदूर काम शुरू कर देता है।

अब देखने की बात है कि अगर सूहलियतें हों तो एक आदमी 5 या 6 घण्टे काम करके दिन-भर की रोजी कमा लेता है। यानी पाँच या छः घण्टे काम करके वह एक दिन की श्रम-शक्ति वापस पाने भर को कमा लेता है। पर पूँजीपति उसे पूरे दिन यानी बारह घण्टे काम में जोतेगा, क्योंकि उसने तो एक दिन के लिए मजूर

रखा है। मशीन के जरिये कच्चे माल पर काम करके मजदूर दिन-भर में उसमें दो रुपये-भर मूल्य भर देता है। पूँजीपति तैयार माल को बाजार में बेचकर एक रुपया तो मजदूर की मजदूरी अदा कर देता है और दूसरा रुपया अपनी जेब में रख लेता है। मजदूर ने जो एक रुपया पूँजीपति से पाया वह पहले छः घण्टे काम करके अदा कर दिया। बाकी 6 घण्टे उससे पूँजीपति मुफ्त में काम लेता है। यही मुफ्त का काम जिसे "अतिरिक्त श्रम" कहते हैं पूँजीपति के मुनाफे का राज है। मजदूर को जितना देता है उससे ज्यादा काम करवा कर पूँजीपति मुनाफा कमाता है और यह मजदूर का शोषण है।

मुनाफे की थैलियों को बढ़ाने की धुन में पूँजीपति हमेशा यही सोचता रहता है कि किस प्रकार मजदूर को कम दाम देकर उससे ज्यादा काम कराया जाय। मजदूरों को चूसने के वह नये-नये तरीके ईजाद करता है काम का बँटवारा, मशीन का इस्तेमाल, बड़ी तादाद में माल बनाना, काम के घण्टे बढ़ाना आदि। मुनाफे में बढ़ती होने पर पूँजीपति अपने कारोबार को बढ़ाता है। पुरानी मशीन हटाकर ऐसी-ऐसी नयी मशीनें लगाता है जिससे दस की जगह एक ही आदमी से काम चल जाय। इससे मजदूरों में बेरोजगारी फैलने लगती है। एक तरफ पूँजीपति का मुनाफा बढ़ता जाता है और दूसरी तरफ आम जनता में बेरोजगारी भूख और तबाही बढ़ती जाती है इसका फायदा उठाकर पूँजीपति मजदूरों की मजदूरी घटाना शुरू कर देता है, कहता है तुम काम नहीं करोगे तो कोई दूसरा करेगा।

श्रेणी संघर्ष

"मनुष्य समाज का इतिहास श्रेणी संघर्ष की कहानी है"। (मार्क्स) शोषक और शोषित वर्गों के बीच एक क्षण के लिए भी न रुकनेवाला यह वर्ग संघर्ष कभी खुले और कभी छिपे रूप में चलता रहता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे एक बात साफ हो जाती है कि पूँजीपति और मजदूर के आर्थिक हित एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं बल्कि खिलाफ हैं क्योंकि पूँजीपति जितना अधिक मजदूर का शोषण करेगा उतना ही उसका मुनाफा बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में मजदूर की तबाही पर पूँजीपति का ऐश कायम है। इसीलिए मुनाफा बढ़ाने के लिए पूँजीपति मजदूर का शोषण तरह-तरह की तिकड़मों से करता है।

मजदूर पूँजीपति की चालों का विरोध करते हैं। मजदूरी में कटौती, छंटनी, काम के घण्टों की बढ़ौती आदि के खिलाफ लड़ते हैं, हड़तालें करते हैं। पूँजीपति के खिलाफ इन लड़ाइयों में मजदूर को पता चलता है कि वे अकेले कुछ नहीं कर सकते। तब वे अपना संगठन खड़ा करते हैं। यूनियन बनाते हैं। पूँजीपति वर्ग के खिलाफ मजदूर वर्ग के श्रेणी संघर्ष की यह पहली शक्ल है। लेकिन मजदूर अगर सिर्फ यूनियनों तक ही सीमित रहें तो वे अपनी हालत में क्षणिक सुधार तो करवा

सकते हैं पर मसले को हल नहीं कर सकते। मगर ज्योंही एक बार मजदूर पूँजीवादी शोषण की असलियत को समझ लेते हैं, अर्थात, जब उन्हें मालूम हो जाता है कि पूँजीपति उनसे दिन में कुछ घण्टे मुफ्त में काम लेकर मुनाफा कमाता है, तो वे पूँजीवादी व्यवस्था को ही खत्म करने की सोचने लगते हैं। तब वे राजनीतिक कामों में हिस्सा लेने की जरूरत अनुभव करने लगते हैं।

पूँजीपति और उनके दलाल अक्सर यह कहते हुए पाये जाते हैं कि कम्युनिस्ट वर्ग युद्ध फैलाते हैं। पर युद्ध तो तब से चला आ रहा है जब से समाज में श्रेणियाँ बनीं। कम्युनिस्ट सिर्फ इस असलियत को स्वीकार करते हैं, उसकी तरफ से आँख बन्द नहीं करते। कम्युनिस्ट इस वर्ग युद्ध को खत्म करना चाहते हैं और इसीलिए वे इस युद्ध को जन्म देनेवाली श्रेणियों को समाज से मिटा देना चाहते हैं। कम्युनिस्ट जानते हैं कि समाज में आज जो अशान्ति दिखायी पड़ती है उसकी जड़ में इस वर्ग संघर्ष का बढ़ा हाथ है। वे यह भी जानते हैं कि हाथ पर हाथ रखकर बैठने से काम न चलेगा और न ही वर्गों के रहते दया, उदारता और अहिंसा का उपदेश देने से वर्ग संघर्ष रुकेगा। इसलिए वे कहते हैं कि अगर वर्ग युद्ध मिटाना है, तो उसे जन्म देनेवाले को ही मिटा दो, पैदावार के साधनों को समाज की सम्पत्ति बना दो। तब न तो कोई पूँजी जमा कर सकेगा और न कोई किसी का शोषण कर सकेगा, न कोई शोषक रहेगा न शोषित। और जब विरोधी वर्ग ही न रहेंगे तो संघर्ष किससे होगा।

पूँजीवाद, संकट और बेरोजगारी

मुनाफे की धुन में पागल हर पूँजीपति चाहता है कि उसका माल बाजार में बिके। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी पूँजीपति को बाजार से बाहर रखना चाहता है। इससे पूँजीपतियों में आपस में होड़ चलती है। हर पूँजीपति दूसरे के मुकाबले ज्यादा मुनाफा कमाना चाहता है। मुनाफे के माने हैं, मजदूर का शोषण अर्थात मुनाफा मजदूर का शोषण करके ही बढ़ाया जा सकता है। इसलिए हर पूँजीपति कोशिश करता है कि अपने मजदूर से अधिक से अधिक मुफ्त काम ले, अर्थात अतिरिक्त मूल्य पैदा करवाये। इसके दो उपाय हैं   पहला यह है कि उतनी ही मजदूरी पर ज्यादा घण्टे काम लिया जाय अर्थात काम के घण्टे बढ़ाकर मजदूर का शोषण किया जाय। लेकिन यह सीधा शोषण मजदूर फौरन भाँप लेते हैं और फौरन वे इसका विरोध करने लगते हैं। इसलिए पूँजीपति दूसरी तिकड़म खेलता है। वह काम के घण्टे न बढ़ाकर तेज रफ्तारवाली मशीन लाकर बिठाता है और उतने ही समय में मशीन के सहारे दूना-चौगुना काम करवा लेता है। वह ऐसी मशीन लगाता है जिस पर दस मजदूरों की जगह एक ही से काम चल जाय। इस तरह एक तरफ तो वह मजदूर की काम करने की ताकत

को बिल्कुल निचोड़ लेता है और उसे कुछ ही सालों में बिल्कुल कमजोर कर देता है और दूसरी तरफ हजारों को बेरोजगार बना देता है। बेरोजगारी पूँजीवादी समाज की छूत है और उसके साथ ही खत्म होगी।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका पहला असर मजदूरों की मोल-भाव की ताकत पर पड़ता है। जब एक आदमी काम कर रहा हो और बाहर दस उम्मीदवार खड़े हों तो पूँजीपति तगड़ा पड़ेगा। वह मजदूर से कहेगा कि तुम्हें हमारी शर्त मानकर काम करना हो तो करो वर्ना बाहर दस खड़े हैं उनमें से किसी को रख लूँगा। मरता क्या न करता कहावत के हिसाब से बेरोजगार भूखा मजदूर कभी-कभी कम मजदूरी पर काम करने पर राजी हो जाता है। इसे बेरोजगारों का मजबूत संगठन और उनमें मजदूर भाईचारे की भावना पैदा करके कुछ हद तक रोका जा सकता है, फिर भी बेरोजगारी मजदूर को कमजोर तो करती ही है।

दूसरा असर यह होता है कि मजदूरों की मजदूरी घट जाने और बेरोजगारी बढ़ जाने से उनकी खरीदने की ताकत घट जाती है। पूँजीपतियों के मुकाबले समाज में मजदूर कहीं अधिक हैं और पूँजीपति के तैयार माल के खरीददारों में उनका विशेष स्थान है। जब उनकी खरीदने की ताकत घटती है तो माल की खपत घट जाती है। इससे आर्थिक संकट पैदा होता है।

पूँजीवादी होड़ का एक नतीजा यह भी होता है बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपतियों को या तो निगल जाते हैं या उन्हें दिवालिया कर देते हैं। वह छोटे और मँझले किसानों और छोटे दस्तकारों के भी बहुत बड़े हिस्से को सर्वहारा बनाकर उन्हें मजदूरी करने पर मजबूर कर देते हैं। हमने देखा कि पूँजीपति मजदूरों के तो एक बहुत बड़े हिस्से को बेरोजगार करता ही है साथ ही छोटे पूँजीपति, दस्तकारों, छोटे सौदागर, किसान इनको भी तबाहकर बेरोजगार बना देता है।

बेरोजगारी पूँजीवाद की सहचरी है। अगर बेरोजगारों की तादाद काफी है तो पूँजीपति को सस्ती मजदूरी पर मजदूर मिल जायेंगे और उसका मुनाफा बढ़ता रहेगा। पूँजीवादी समाज में कोई भी अपनी जगह पक्की नहीं समझता कोई नहीं जानता कि कल क्या होगा, रोजी रहेगी या जायेगी।

पूँजीवाद की उन्नति के साथ-साथ एक तरफ आम जनता की गरीबी बढ़ती है और दूसरी तरफ मुट्ठी-भर पूँजीपतियों की तिजोरी और उनकी काहिली बढ़ती है।

पूँजीवाद को खत्म करके ही भूख, गरीबी और बेरोजगारी से छुटकारा मिल सकता है।

पूँजीवादी संकट

हम ऊपर कह चुके हैं कि पूँजीवादी समाज में पैदावार की कोई योजना नहीं होती। पूँजीपति आँख बन्द किये सामान बनाता जाता है और सोचता है कि कोई न

कोई खरीददार मिल ही जायेगा। उसके माल की समाज में खपत नहीं रही इसका पता उसके माल बनाते समय नहीं चलता है। इसका पता तब चलता है जब बाजार के गोदामों में माल भरने लगता है और कोई उसका खरीददार नहीं मिलता। खरीददार न मिलने के यह माने नहीं कि समाज में किसी को चीज की जरूरत नहीं। खरीददार तो इसलिए नहीं मिलते कि लोगों की जेबों में पैसा नहीं रह जाता है। तब पूँजीपति उस माल को बनाना थोड़ी देर के लिए बन्द कर देता है, मिल बन्द कर देता है। इससे और मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं, खरीददारों की जेबें और खाली हो जाती हैं। इसका असर दूसरे उद्योगों पर भी पड़ता है, वहाँ भी मिलें बन्द होने लगती हैं। एक तरफ बाजारों के गोदामों में माल भरा होता है और दूसरी तरफ उसे खरीद के लिए लोगों की जेबों में पैसा नहीं होता। गोदामों में कपड़ा भरा होता है, सड़कों पर लोग नंगे फिरते हैं। संकट का सबसे घातक असर मजदूरों और दूसरे गरीब तबकों पर पड़ता है, क्योंकि एक तरफ तो बेकारी बेहिसाब बढ़ जाती है और दूसरी तरफ गरीबी।

इसके चक्कर में पूंजीवाद हर दस-बारह साल बाद स्वयं फँसता आया है और साथ में समाज के लोगों को भी फँसाता आया है। वह मजदूर से ज्यादा अतिरिक्त मूल्य लेने की कोशिश करता है। मजदूर की कमाई का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा उसको बगैर कुछ दिये हड़पने की कोशिश करता है। इसके लिए वह अपना कारोबार बढ़ाता है, पैदावार बढ़ाता है। पैदावार बढ़ाकर मजदूर से ज्यादा लूटने के लिए, नयी और तेज मशीने लगता है और नयी व तेज मशीन के माने हैं दस की जगह एक ही मजदूर, इससे और बेरोजगारी फैलती है। बेरोजगार की जेब खाली होने के कारण उसकी खरीदने की ताकत मारी जाती है। तो एक तरफ तो पूँजीपति पैदावार बढ़ाता है और दूसरी तरफ जो लोग उस माल को खरीदेंगे उन्हें बेरोजगार कर देता है। यह बीमारी भी पूँजीवाद की जन्म की बीमार है और उसे पूँजीवाद के साथ ही खत्म किया जा सकता है।

पूँजीपति इस आर्थिक संकट से अपने तरीके पर छुटकारा पाने की कोशिश करते हैं। वे अपने संकट का बोझ जनता के कंधों पर डालने की कोशिश करते हैं। वे यह काम कैसे करते हैं। उस पर अगले सबक में लिखेंगे।

साम्राज्यवाद और युद्ध

पूँजीवाद और इजारेदारी

आपस की होड़, मुनाफे का पागलपन और पैदावार बढ़ाने की धुन में पूँजीपति नयी-नयी मशीनों को ईजाद करता है। छोटी मशीनों की जगह बड़ी मशीनें बिठायी जाती हैं। छोटे कारखानों की जगह बड़े-बड़े दानवी कारखाने ले लेते हैं, जिनमें हजारों

की तादाद में मजदूर काम करते हैं। बड़े कारखानों में एक साथ ज्यादा माल बनाना सस्ता पड़ता है। इसलिए बड़े कारखानेवाले बाजार में अपना माल सस्ता बेचकर छोटे कारखानेवालों को आसानी से पछाड़ सकते हैं। ऐसी हालत में छोटे कारखानेदारों के पास दो ही चारे रह जाते हैं। या तो वे भी अपना कारोबार बढ़ाए या दिवालिया होकर अलग हो जायें। इस तरह पैदावार के केन्द्रीकरण के साथ-साथ पूँजी का भी केन्द्रीकरण होता है।

धीरे-धीरे जैसे-जेसे केन्द्रीकरण बढ़ता है, वैसे-वैसे छोटे पूँजीपति होड़ में न ठहर पाने के कारण दिवालिया हो जाते हैं या बड़े पूँजीपति उन्हें निगल जाते हैं। अन्त में बहुत-से छोटे कारोबारों की जगह एक या कुछ एक बड़ी फर्म या कम्पनियाँ रह जाती हैं जिनके हाथ में उद्योग की सारी शाखाएँ आ जाती हैं। इसी को इजारेदार पूँजीवाद कहते हैं। इस अवस्था को लेनिन ने पूँजीवाद की सबसे ऊँची और अन्तिम अवस्था कहा था। इजारेदार पूँजीवाद को लेनिन ने ''मरता हुआ'' पूँजीवाद भी कहा था क्योंकि इसी समय पर पूँजीवादी व्यवस्था के सारे अन्तरविरोध भी खुलकर और तेजी के साथ सामने आते हैं।

इजारेदारी युग में पूँजीवाद की होड़ खत्म नहीं हो जाती बल्कि और तेज हो जाती है। जो होड़ पहले पूँजीपति-पूँजीपति में थी वह अब एक ईजारेदार फर्म और दूसरे इजारेदार फर्म में होने लगती है। पहले टक्कर छोटो-छोटो में थी, अब बड़ों-बड़ों में होने लगती है। इसका नतीजा यह होता है कि होड़ की खराबियाँ भी, जिनका जिक्र पहले कर चुके हैं, अब बड़े पैमाने पर सामने आती हैं। पूँजीवाद आम संकट के चक्कर में पड़ जाता है। महँगाई बेहद बढ़ जाती है। माल न बिकने के कारण गोदाम जला दिये जाते हैं या समुद्र में फेंक दिये जाते हैं, मिलें और कारखाने बन्द होने लगते हैं, कभी-कभी गिरा दिये जाते हैं और बेरोजगारी की छूत सबको निगलने लगती है।

छोटे-छोटे कारखानों की जब बड़ी कम्पनियाँ बन जाती हैं तो एक तरफ तो साहूकार महाजन लोग उनमें हिस्सेदार बनने लगते हैं और दूसरी तरफ कम्पनियाँ बैंकों में हिस्सा खरीदती हैं। इस तरह औद्योगिक पूँजी और बैंक पूँजी भी एक हो जाती है। तब पूँजीपति वर्ग की ताकत इजारेदारों के एक या दो गुटों के हाथ में आ जाती है। धीरे-धीरे करोड़पतियों का यह छोटा-सा गुट देश के सारे आर्थिक जीवन पर छा जाता है, जैसा इस समय अमरीका और इंग्लैण्ड में है। देश के आर्थिक जीवन की लगाम पा जाने से यह इजारेदार राजनीतिक ताकत को भी आसानी से हथिया लेते हैं। फिर राजसत्ता की सारी ताकत और उसकी सारी नीति इन्हीं इजारेदारों के फायदे के लिए इस्तेमाल होने लगती है। तब राजसत्ता इजरोदारों के हाथ का सीधा हथियार बन जाती है और खुलेआम उसका इस्तेमाल देश में पूँजीपति वर्ग के विरोधियों को दबाने के लिए होता है खासकर संगठित मजदूरों को दबाने के लिए। पूँजीवाद

का झूठा जनतंत्रवाद भी खत्म हो जाता है और वह फासिज्म की शक्ल ले लेता है। लेकिन इजारेदार पूँजीवाद सिर्फ एक देश की चीज नहीं है। उसका स्वरूप अन्तरराष्ट्रीय है। इसलिए आइये अन्तरराष्ट्रीय दायरे में भी उस पर विचार कर लें।

इजारेदारी और साम्राज्यवाद

पूँजीवादी होड़ के शुरू के दिनो में पूँजीपति तैयार माल दूसरे देशों को भेजते हैं, जैसे शुरू में इंग्लैंड, जर्मनी आदि का माल बिकने के लिए हिन्दुस्तान में आता था। माल बेचकर जो पैसा मिलता था उससे वे खाना और कच्चा माल खरीदकर ले जाते थे। वह औद्योगिक पूँजीवाद का जमाना था और उस समय खुली होड़ चलती थी।

इजारेदारी का चलन हो जाने के बाद से पिछड़े देशों के बाजारों में तैयार माल भेजने की जगह वहाँ पर अपनी पूँजी लगाने को अधिक महत्त्व मिलने लगा। इसका यह मतलब नहीं कि तैयार माल आना बन्द हो गया। इसका एक कारण यह था कि पूँजीवादी देशों के मजदूर सजग और संगठित हो गये थे और ज्यादा मजदूरी की माँग करते थे। इन कारणों से दिन दूनी बढ़ती हुई पूँजी को पिछड़े देशों में लगाना फायदे का है क्योंकि वहाँ का मजदूर ज्यादा गरीब होने के कारण कम मजदूरी पर काम करने को राजी हो जाता है। साथ ही संगठित और सजग न होने के कारण ज्यादा मजदूरी की माँग भी नहीं कर पाता और अगर ऐसा करता है तो आसानी से दबा दिया जाता है। पिछड़े देशों में पूँजी लगाने के कई एक तरीके हैं। जैसे वहाँ की रेलों और बन्दरगाहों में रुपया लगाना। ऐसे उद्योगों में रुपया लगाना जिनसे अपने देश के उद्योगों को कोई धक्का न लगे। वहाँ की सरकारों और कम्पनियों को सीधे कर्जा देना या वहीं पर बैंक खोलकर वहाँ छोटे-छोटे पूँजीपतियों को कर्जा देना।

हिन्दुस्तान में अब भी बहुत से उद्योगों में अंग्रेजों का रुपया लगा है। बैंक अंग्रेजों के हाथ में हिन्दुस्तान के उपनिवेशिक शोषण का सबसे मजबूत साधन था। अब भी अपने देश के कई एक बड़े-बड़े बैंक अंग्रेज इजारेदारों के हाथ में हैं। यह बैंक एक हाथ से हिन्दुस्तान के उद्योगों में, रेलों और बन्दरगाहों में रुपया लगाते हैं, मजदूरों का शोषणकर मुनाफा कमाते हैं और दूसरे हाथ में वह मुनाफा ब्याज की शक्ल में अंग्रेज मालिकों को सौंप देते हैं। इन बैंको के जरिये अंग्रेज साहूकारों ने उद्योमों में एक अच्छे हिस्से को पूरी तरह से अपने काबू में कर रखा है। इसी तरह आधे से ज्यादा जूट और चाय के कारोबार में, करीब एक तिहाई लोहा और इस्पात के उद्योगों में, अधिकाँश खानों और रबड़ के बगीचों में अंग्रेजी पूँजी लगी है।

पिछड़े देशों में पूँजी लगाने का एक तरीका यह भी है कि वहाँ की सरकारों पर कर्जा लादा जाय। अमरीका आजकल इस तरीके का सबसे अधिक इस्तेमाल

कर रहा है। यह कर्जा यों ही नहीं मिल जाता। कर्जे के साथ-साथ यह शर्त लगा दी जाती है कि फिर इस कर्ज से हमारा इतना माल जरूर खरीदना पड़ेगा। यह दोहरी लूट है। पहले कर्ज देकर सूद लो, फिर अपना सामान बेचकर कमाओ।

इजारेदार पूँजीपतियों की दूसरे देश में पूँजी लगाने के इस बढ़ते हुए रुझान का जरूरी परिणाम यह होता है कि वे जिस देश में अपनी पूँजी भेजते हैं उसका राजनीतिक नियंत्रण भी अपने हाथ में लेने की कोशिश करते हैं। उस देश से अपनी मनमानी शर्तें मनवाने के लिए यह बहुत जरूरी हो जाता है। एक और भी बात है। इजारेदार पूँजीपति पिछड़े देशों में अपना रुपया भेजते हैं, उधार देते हैं और साथ ही यह भी चाहते हैं कि वह रुपया बड़े और बुनियादी उद्योगों को चालू करने में न लगाया जाय। यह तभी हो सकता है जब उस देश की राजनीतिक लगाम भी इन्हीं इजारेदारों के हाथ में रहे। इसके फलस्वरूप पूँजीवादी ताकतों के बीच दुनिया का बन्दरबाँट शुरू होता है।

पिछड़े देशों पर राजनीतिक अधिकार जमाने के दो तरीके हैं। पहला तरीका है उन देशों को सीधे तौर से जीतकर उन्हें अपना उपनिवेश बना लेना और वहाँ अपनी सीधी हुकूमत कायम कर लेना। भारतवर्ष में सन् 1947 से पहले अंग्रेजों की इसी प्रकार की सीधी राजनीतिक हुकूमत थी। 1875-1900 के बीच अफ्रीका को इसी तरह सीधी विजय के जरिये काबू किया गया था। दूसरा तरीका है कूटनीति का दबाव डालकर, बल प्रयोग की धमकी देकर और अपने पिट्ठुओं को गुड़िया सरकार कायम करके अपने राजनीतिक नियंत्रण को पिछड़े देशों पर लादना। इसे 'नवउपनिवेशीकरण' कहते हैं। पिछली लड़ाई से पहले पूर्वी योरुप के देशों के साथ इंग्लैंड का यही सम्बन्ध था। दक्षिणी अमरीका के देशों को अमरीका इसी तरह काबू किये हुए है। दक्षिणी कोरिया की सरकार ऐसी ही सरकार है। अमरीका इन सब में आज सबसे आगे है। वह सारी पूँजीवादी दुनिया का महाजन बन गया है और अपने कर्जों की रकम के सहारे पूँजीवादी देशों तक पर अपनी छिपी राजनीतिक गुलामी लाद रहा है।

हमने देखा कि इजारेदार पूँजीवाद की बढ़ती के साथ-साथ उपनिवेश और अर्द्ध-पनिवेशों के लिए भी होड़ लगती है। इजारेदार पूँजीवाद अपनी आर्थिक गुलामी के साथ-साथ जरूरी तौर पर पिछड़े देशों पर राजनीतिक गुलामी लादने लगता है। इसलिए लेनिन ने इजारेदार पूँजीवाद के युग को साम्राज्यवाद के युग का भी नाम दिया था।

साम्राज्यवाद और युद्ध

यों तो लड़ाइयाँ जब से समाज श्रेणियों में बँटा है तभी से होती आयी हैं। पहले कबीलों-कबीलों की लड़ाइयाँ होती थीं, फिर गुलाम पकड़ने के लिए होने लगीं। सामन्तवादी युग में एक सामन्त या राजा दूसरे की जागीर या रियासत पर दखल

करने के लिए लड़ाइयाँ करता था। पूँजीवाद के आरम्भ के दिनों से पूँजीवादी देश पिछड़े देशों को जीतकर उन्हें अपना उपनिवेश बनाने के लिए लड़ाइयाँ करते थे। आरम्भ में इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड आदि देशों ने पिछड़े देशों पर इस तरह की ही लड़ाइयाँ लादीं। भारतवर्ष भी इस तरह की लड़ाइयों का शिकार होकर अंग्रेजों का गुलाम बन गया था। जिस देश के खिलाफ पूँजीवादी देश इस तरह की लड़ाई का एलान करते थे उसकी जनता पर इससे परेशानियों और मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता था। लेकिन वे आज की लड़ाइयों की तरह विश्वव्यापी नहीं होती थीं। वे अधिकतर स्थानीय क्षेत्र में ही लड़ी जाती थीं, अर्थात जिस पिछड़े देश के खिलाफ लड़ाई होती थी उसके अलावा बाकी दुनिया उसमें नहीं पड़ती थी। बहुत हुआ तो दो-चार और शरीक हो गये। कहने का मतलब यह कि इन लड़ाइयों का स्वरूप अधिकतर स्थानीय होता था। वे एक दायरे के बाहर नहीं जाती थीं। विश्वव्यापी लड़ाइयाँ, अर्थात, ऐसी लड़ाइयाँ जिनमें किसी न किसी शक्ल से सारी दुनिया खिंच आये, जैसे सन् 1914-17 की लड़ाई या 1939-45 की लड़ाई साम्राज्यवादी युग की विशेषता है। विश्वश्यापी लड़ाइयों के बगैर साम्राज्यवादियों का काम चल ही नहीं सकता।

साम्राज्यवादी या इजारेदार पूँजीपति लड़ाइयाँ क्यों छेड़ते रहते हैं इसे भी समझ लेना चाहिए। हम पहले बतला चुके हैं कि शुरू में कुछ आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों ने दुनिया को उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों की शक्ल में आपस में बाँट लिया था। उन्नसीवीं सदी के आखिरी तक यह बँटवारा पूरा हो चुका था। इस बँटवारे में जो पूँजीवादी देश आर्थिक और राजनीतिक निगाह से जितना ताकतवर था उसी हिसाब से उसके हाथ उपनिवेश भी आये थे। लेकिन जैसे देश के अन्दर आपस की होड़ में कल का आगे बढ़ा हुआ पूँजीपति आज पिछड़ जाता है और नये पूँजीपति पुराने के मुकाबले खड़े होकर आगे निकल जाते हैं उसी तरह और उन्हीं कारणों से अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी कल के पिछड़े देश अपने से आगे बढ़े हुए देशों को पीछे छोड़कर आगे निकल जाते हैं। इस नियम को पूँजीवाद के अनियमित और असमान विकास का नियम कहते हैं।

एक समय था जब औद्योगिक विकास के ख्याल से जर्मनी के मुकाबले इंग्लैंड काफी आगे बढ़ा देश था। जर्मनी में बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धों का विकास देर में शुरू हुआ। लेकिन जर्मनी को इंग्लैंड के तजुर्बों से फायदा उठाने का मौका मिला। इसलिए वहाँ पूँजीवाद की उन्नति बहुत तेजी के साथ हुई और इंग्लैंड को पीछे छोड़कर वह आगे निकल गया। तब उसे अपना माल बेचने के लिए उपनिवेशों की जरूरत पड़ी। लेकिन दुनिया का बँटवारा तो पहले ही हो चुका था और राजी-खुशी कोई अपना उपनिवेश छोड़ने को तैयार न था। उसका परिणाम हुआ 1914-17 की लड़ाई।

1914-17 की मार-काट और तबाही से लड़ाई का अन्त नहीं हुआ और न

ही उससे कोई मसला हल हुआ क्योंकि पूँजीवादी देशों का असमान विकास तो चलता ही रहा, हाँ परिस्थितियाँ जरूर बदल गयीं। अब एक तरफ तो सोवियत रूस में मजदूर क्रान्ति की सफलता और समाजवाद की विजय के कारण दुनिया में साम्राज्यवाद कमजोर पड़ गया, दुनिया का तिहाई भाग उसके चंगुल से बाहर हो गया। दूसरी तरफ हारे हुए देशों के इजारेदारों ने समाजवाद की जीत और मजदूरों के बढ़ते हुए कदमों को रोकने और खोये हुए उपनिवेशों को फिर से पाने के लिए फासिज्म की शरण ली। फासिज्म इजारेदार पूँजीवाद की नंगी आतंकपूर्ण तानाशाही है। फासिस्ट ताकतों ने दो उद्देश्यों को सामने रखकर फिर लड़ाई की तैयारी शुरू की। एक तरफ वे साम्राज्यवादी दुनिया में फिर से अपना पुराना स्थान पाना चाहते थे और सन् 1914-17 की लड़ाई में जीते हुए देशों के उपनिवेशों और उनके बाजारों पर कब्जा करने के साथ-साथ उन देशों को अपना उपनिवेश बना लेना चाहते थे। दूसरी तरफ वे दुनिया की पहली समाजवादी ताकत अर्थात सोवियत रूस को खत्म करना चाहते थे। इस उद्देश्य को लेकर उन्होंने दूसरे महायुद्ध का श्रीगणेश किया। लेकिन फासिस्टों को इसमें मुँह की खानी पड़ी। सोवियत संघ के नेतृत्व में सोवियत रूस और गैर फासिस्ट देशों की जनता के मजबूत एके ने इस महान स्वाधीनता सग्राम (दूसरा महायुद्ध) में फासिस्टों के नापाक इरादों को चकनाचूर कर दिया।

फासिज्म के खिलाफ आजादी की लड़ाई में जीत का नतीजा यह हुआ कि सोवियत संघ के नेतृत्व में जनवाद और समाजवाद का पक्ष काफी मजबूत हो गया। कितने ही नये देश पूँजीवादी दायरे से निकलकर समाजवादी दायरे में आ गये, जैसे चेकोस्लावैकिया, हंगरी, पोलैंड, रूमानिया, बल्गोरिया, अल्बेनिया, पूर्वी जर्मनी। उधर कॉमरेड स्तालिन और माओ त्से-तुंग की रहनुमासई में चीनी जनता ने भी चीन में अमरिका और उसके पिट्ठू च्याँग को हटाकर वहाँ जनता की जनवादी सरकार कायम कर ली। ऐशिया में पूँजीवादी देशों के उपनिवेशों में भी स्वाधीनता संग्राम छिड़ गया। जनवादी शक्तियों की इस बढ़ती हुई ताकत को देखकर साम्राज्यवादी बोखला उठे हैं।

एक तरफ अमरीका, जिसकी ताकत दूसरे साम्राज्यवादी देशों के मुकाबले पिछली लड़ाई के बाद काफी बढ़ गयी है, अपने पैसे और फौजी ताकत के सहारे बाकी देशों को, चाहे वे पूँजीवादी देश हों या उपनिवेश, अपना खरीदा हुआ गुलाम बनाता जा रहा है कर्ज के सहारे उनकी राजनीतिक और आर्थिक आजादी को खरीदता जा रहा है, या यों कहिये कि डॉलर साम्राज्य कायम कर रहा है, दूसरी तरफ कम्युनिज्म को सीमित रखने के नाम पर सोवियत रूस, तथा दूसरे समाजवादी देशों के खिलाफ तेजी के साथ लड़ाई की तैयारी कर रहा है। आज वह हर उपाय से दुनिया की शान्ति भंग करने के लिए उतावला है। पहले कोरिया फिर वियतनाम, कम्बोडिया तथा लाओस में और अब पश्चिम एशिया तथा अफ्रीका में उसका नंगा नाच चालू है। अमरीकी

जंगबाज खुलेआम कहते हैं कि रूस, चीन आदि समाजवादी देशों पर अभी हमला कर दो, वर्ना दो-चार साल बाद वे इतने ताकतवर हो जायेंगे कि फिर दुनिया में कम्युनिज्म को रोकना एकदम बस से बाहर हो जायेगा।

इजारेदार पूँजीपतियों की लड़ाई के लिए उतावलेपन का एक और भी कारण है। ऊपर कहा जा चुका है कि लड़ाई के बाद दुनिया का एक बहुत बड़ा हिस्सा (पूर्वी योरुप, चीन, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, क्यूबा, आदि) साम्राजयवादियों के चंगुल से आजाद हो गया है। इससे उनके बाजार सिकुड़ गये हैं और आर्थिक संकट समाप्त होने के कोई आसार नहीं दिखाई पड़ते हैं। अब साम्राज्यवाद मुस्तकिल संकट के युग में पहुँच गया है। संकट से पैदा होनेवाली बेरोजगारी, गरीबी आदि के कारण जनता के इस्तेमाल के माल पर अब इजारेदारों को मनमाना मुनाफा नहीं मिल रहा है। जेबें खाली होने के कारण लोग खरीद भी नहीं पा रहे हैं। ऐसी हालत में इजारेदार पूँजीपति जनता के इस्तेमाल का सामान बनाना रोककर लड़ाई का सामान अर्थात, बम, गोले, तोपें, हवाई जहाज आदि बनाना आरम्भ कर देते हैं। एक तरफ लड़ाई का सामान बनाते हैं और दूसरी तरफ अपने देश की सरकार पर, जिसमें उन्हीं के आदमी भरे हैं, दबाव डालते हैं कि वे लड़ाइयाँ छेड़े। अमरीका इंग्लैंड आदि देशों की सरकारें पूँजीपतियों की सरकारें हैं। इसलिए मालिकों का इजारा पाते ही उन्होंने लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी। लड़ाई की तैयारी करने पर या लड़ाई छिड़ जाने पर हथियारों की जरूरत पड़ती है। सरकार हथियार इजारेदार पूँजीपतियों से खरीदती है। इसके लिए रुपया कहाँ से आता है? वह रुपया आता है आम जनता पर नये-नये टैक्स लगाकर या सिक्के की दर घटाकर। इस तरह बेरोजगार, गरीब जनता से लूटकर सरकार रुपया जमा करती है। और फिर उसी रुपये से इजारेदारों से हथियार खरीदकर लड़ाइयाँ छेड़ती है। इन लड़ाइयों में भी वे अपने विरोधी देशों की जनता को ही मारते हैं। मगर लड़ाई किसी जनवादी देश के खिलाफ है तो वे सारे देश को ही मरघट बना डालते हैं। वियतनाम में ऐसा ही हुआ।

हमने देखा कि आज के दिन लड़ाइयों के बगैर साम्राज्यवाद जिन्दा ही नहीं रह सकता। इसलिए अगर इन लड़ाइयों से और उनसे पैदा होनेवाली तबाहियों से हमेशा के लिए छुटकारा पाना है तो हमें पूँजीवादी समाज को ही खत्म करना पड़ेगा।

आज लड़ाई के बगैर साम्राज्यवाद जिन्दा नहीं रह सकता। "युद्ध इजारेदार पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का मुस्तकिल साथी है।" युद्ध उसका जीवन है और शान्ति उसकी मौत। इसलिए मौत को थोड़े दिन टालने के उद्देश्य से साम्राज्यवादियों ने दुनिया को एक सार्वभौमिक युद्ध की आग में फिर से झोंकने की जोरों से तैयारी शुरू कर दी है।

यहाँ यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि आज के दिन विश्व को साम्राज्यवादी युद्धों की तबाही से बचाने की ताकत "मार्क्सवादी-लेनिनवादी" रास्ते

पर चलनेवाले मजदूर वर्ग को छोड़कर और किसी भी वर्ग में नहीं है क्योंकि आज के समाज में सिर्फ यही वर्ग, जिसे हम सर्वहारा कहकर पुकारते हैं, मुस्तैदी के साथ पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ बगावत का झण्ड बुलन्द करता रहा है।

लेनिन ने कहा था कि युद्धों को समाप्त करने की दिशा में और मेहनतकशों की कीमत पर लड़ाइयाँ छेड़ने और सुलह करनेवाले पूँजीपति वर्ग के खिलाफ सभी देशों के मजदूरों को एकजुट करने की दिशा में रूस की महान अक्टूबर क्रान्ति पहली विजय थी। आगे चलकर लेनिन ने कहा कि ''पहली बोल्शविक क्रान्ति ने इस धरती के पहले दस करोड़ व्यक्तियों को साम्राज्यवादी युद्ध और साम्राज्यवादी दुनिया के चंगुल से बाहर कर लिया है। आगे की क्रान्तियाँ बाकी मानव जाति को इस प्रकार के युद्धों और इस प्रकार की दुनिया से मुक्ति प्रदान करेगी।'' (अक्टूबर क्रान्ति की चौथी वर्षगाँठ पर दिये गये भाषण से।)

और लेनिन की इन्हीं शिक्षाओं पर अमल करते हुए स्तालिन ने साम्राज्यवादियों से ललकारकर कहा था कि हम तुमसे शान्ति की भीख नहीं माँगते हम तुम्हारे हाथ से शान्ति छीनेंगे। और साम्राज्यवादियों के हाथों से शान्ति छीनने का काम साम्राज्यवादियों को दफनाकर ही पूरा हो सकेगा। दूसरे शब्दों में मुस्तकिल शान्ति पूँजीवादी समाज व्यवस्था को समाप्तकर समाजवाद की स्थापना द्वारा ही हासिल की जा सकती है। इसीलिए शान्ति के सवाल को क्रान्ति के साथ जोड़कर देखने के हम कायल हैं।

कुछ लोग शान्ति के सवाल को वर्ग संघर्ष के सवाल से अलग करके देखते हैं। वे सिर्फ साम्राज्यवादियों की सद्‌भावनाओं को जगाकर उनका हृदय परिवर्तन करके, उनके साथ राजकीय स्तर पर समझौते करके या उनकी हमलावर हरकतों को नजरअन्दाज करके शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। शान्ति आन्दोलन का यह नजरिया संशोधनवादी एवं क्रान्ति विरोधी है।

शान्ति आन्दोलन क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण मोर्चा बन सकता है, बशर्ते कि उसे वर्ग संघर्ष को तेज करने के उद्‌देश्य से चलाया जाय। संशोधनवादी उस आन्दोलन को वर्ग-समन्वय का हथियार बनाकर चलाते हैं।

आज की अन्तरराष्ट्रीय हालतों में यह तो सम्भव है कि किसी खास लड़ाई को किन्हीं खास हालतों के मातहत थोड़े समय के लिए टाल दिया जाय। समाजवादी खेमे की मिली-जुली ताकत के सामने साम्राज्यवादी थोड़ी देर के लिए हट जायें। लेकिन यह युद्ध को टालना-भर होगा। इससे मानव जाति को युद्ध से सदा के लिए छुटकारा नहीं मिल सकेगा। इसके लिए तो हमें पूँजीवादी व्यवस्था को ही दफनाना पड़ेगा।

यह सही है कि पूँजीवाद ने एक समय पर पैदावार के साधनों की खूब उन्नति की और विज्ञान को आगे बढ़ाया। लेकिन आज वह गरीबी, तबाही, हिंसा और लड़ाइयों का कारण बन रहा है और उसके रहते समाज में शान्ति नहीं हो सकती। इसलिए समाज की उन्नति के लिए, लोगों की शान्ति, सुख और चैन की जिन्दगी के लिए

इस पूँजीवादी समाज का अन्त और समाजवादी समाज की स्थापना एक जरूरी काम है।

सोवियत रूस के मजदूरों और किसानों ने सन् 1917 में ही यह काम अक्टूबर क्रान्ति के जरिये पूरा कर लिया था। पिछड़ी लड़ाई के बाद पूर्वी योरूप और जनवादी चीन ने और उसके बाद उत्तरी कोरिया, वियतनाम क्यूबा, कम्बोडिया, लाओस और अंगोला ने भी अपने-अपने देशों के इजारेदारों और उनके पिट्ठुओं को पछाड़कर जनता के सच्चे जनवाद की स्थापना कर ली है। इन देशों में बेरोजगारी, भूख, गरीबी, शोषण और अभाव का खात्मा कर दिया है। वहाँ की सरकारों पर मजदूरों और किसानों का अधिकार है। वहाँ अब आर्थिक या राजनीतिक संकट नाम की कोई चीज नहीं रही। पैदावार दिनों-दिन बढ़ रही है और साथ ही लोगों के रहने का स्तर भी उसी हिसाब से बढ़ गया है।

साम्राज्यवादी शोषण से पैदा होनेवाली ऊपर बतायी गयी बुराइयों और परेशानियों से बचाने के लिए हमें शोषण, लूट और हिंसा की दीवार पर खड़े इस पूँजीवादी समाज को ही खत्म करना पड़ेगा। मजदूर-किसान राज्य ही इन बुराइयों की एक मात्र दवा है।

❑❑❑